दो माँ , दो बाप , दो नगर , दो प्रेमिकाएँ या यों कहिए अनेक (ले. लोहिया)

कृष्ण की सभी चीजें दो हैं : दो माँ , दो बाप , दो नगर , दो प्रेमिकाएँ या यों कहिए अनेक । जो चीज संसारी अर्थ में बाद की या स्वीकृत या सामाजिक है , वह असली से भी श्रेष्ठ और अधिक प्रिय हो गयी है । यों कृष्ण देवकीनन्दन भी हैं , लेकिन यशोदानन्दन अधिक । ऐसे लोग भी मिल सकते हैं जो कृष्ण की असली माँ , पेट-माँ का नाम न जानते हों ,लेकिन बाद वाली दूध वाली , यशोदा का नाम न जानने वाला कोई निराला ही होगा । उसी तरह , वसुदेव कुछ हारे हुए से हैं , और नन्द को असली बाप से कुछ बढ़ कर ही रुतबा मिल गया है । द्वारका और मथुरा की होड़ करना कुछ ठीक नहीं ,क्योंकि भूगोल और इतिहास ने मथुरा का साथ दिया है । किन्तु यदि कृष्ण की चले , तो द्वारका और द्वारकाधीश , मथुरा और मथुरापति से अधिक प्रिय रहे । मथुरा से तो बाललीला और यौवनक्रीडा की दृष्टि से , वृन्दावन और बरसाना वगैरह अधिक महत्वपूर्ण हैं । प्रेमिकाओं का प्रश्न जरा उलझा हुआ है । किसकी तुलना की जाय , रुक्मणी और सत्यभामा की , राधा और रुक्मणी की , या राधा और द्रौपदी की । प्रेमिका शब्द का अर्थ संकुचित न कर सखा-सखी भाव को ले के चलना होगा । अब तो मीरा ने भी होड़ लगानी शुरु की है । जो हो , अभी तो राधा ही बडभागिनी है कि तीन लोक का स्वामी उसके चरणों का दास है । समय का फेर और महाकाल शायद द्रौपदी या मीरा को राधा की जगह तक पहुँचाये , लेकिन इतना सम्भव नहीं लगता । हर हालत में , रुक्मणी राधा से टक्कर कभी नहीं ले सकेगी ।

मनुष्य की शारीरिक सीमा उसका चमड़ा और नख है । यह शारीरिक सीमा उसे अपना एक दोस्त , एक माँ , एक बाप , एक दर्शन वगैरह देती रहती है । किन्तु समय हमेशा इस सीमा से बाहर उछलने की कोशिश करता रहता है , मन ही के द्वारा उछल सकता है । कृष्ण उसी तत्व और महान प्रेम का नाम है जो मन को प्रदत्त सीमाओं से उलाँघता-उलाँघता सब में मिला देता है , किसी से भी अलग नहीं रखता । क्योंकि कृष्ण तो घटनाक्रमों वाली मनुष्य लीला है , केवल सिद्धान्तों और तत्वों का विवेचन नहीं , इसलिए उसकी सभी चीजें अपनी और एक की सीमा में न रह कर दो और निरापनी हो गयी है । यों दोनों में ही कृष्ण का तो निरापना है , किन्तु लीला के तौर पर अपनी माँ , बीवी और नगरी से परायी बढ़ गयी है । पराई को अपनी से बढ़ने देना भी तो एक मानी में अपनेपन को खत्म करना है । मथुरा का एकाधिपत्य खत्म करती है द्वारका , लेकिन उस क्रम में द्वारका अपना श्रेष्ठत्व जैसा कायम कर लेती है।

भारतीय साहित्य में माँ है यशोदा और लला हैं कृष्ण । माँ-लला का इन से बढ़ कर मुझे तो कोई सम्बन्ध मालूम नहीं , किन्तु श्रेष्ठत्व भर ही तो कायम होता है । मथुरा हटती नहीं और न रुक्मणी , जो मगध के जरासन्ध से ले कर शिशुपाल होती हुई हस्तिनापुर के द्रौपदी और पाँच पाण्डवों तक एक-रूपता बनाये रखती है । परकीया स्वकीया से बढ़कर उसे खत्म तो करता नहीं , केवल अपने

और पराये की दीवारों को ढहा देता है । लोभ , मोह, ईर्ष्या , भय इत्यादि की चहारदीवारी से अपना या स्वकीय छुटकारा पा जाता है । सब अपना और , अपना सब हो जाता है । बड़ी रसीली लीला है कृष्ण की , इस राधा-कृष्ण या द्रौपदी-सखा और रुक्मणी-रमण की कहीं चर्म सीमित शरीर में ,प्रेमानन्द और खून की गरमी और तेजी में , कमी नहीं । लेकिन यह सब रहते हुए भी कैसा निरापना ।

कृष्ण हैं कौन ? गिरधारी , गिरधर गोपाल ! वैसे तो मुरलीधर और चक्रधर भी है , लेकिन कृष्ण गुह्यतम रूप तो गिरधर गोपाल में ही निखरता है । कान्हा को गोवर्धन पर्वत अपनी कानी उँगली पर क्यों उठाना पड़ा था ? इसलिए न की उसने इन्द्र की पूजा बन्द करवा दी और इन्द्र का भोग , खुद खा गया , और भी खाता रहा । इन्द्र ने नाराज हो कर पानी , ओला , पत्थर बरसाना शुरु किया,तभी तो कृष्ण को गोवर्धन उठा कर अपने गो और गोपालों की रक्षा करनी पड़ी । कृष्ण ने इन्द्र का भोग खुद क्यों खाना चाहा ? यशोदा और कृष्ण का इस सम्बन्ध में गुह्य विवाद है । माँ,इन्द्र को भोग लगाना चाहती है , क्योंकि वह बड़ा देवता है , सिर्फ वास से ही तृप्त हो जाता है,और उसकी बड़ी शक्ति है,प्रसन्न होने पर बहुत वर देता है और नाराज होने पर तकलीफ । बेटा कहता है वह इन्द्र से भी बड़ा देवता है ,क्योंकि वह तो वास से तृप्त नहीं होता और बहुत खा सकता है और उसके खाने की कोई सीमा नहीं । यही है कृष्ण-लीला का गुह्य-रहस्य । वास लेने वाले देवतओं से खाने वाले देवताओं तक की भारत - यात्रा ही कृष्ण-लीला है ।

कृष्ण के पहले , भारतीय देव , आसमान के देवता हैं । निस्सन्देह अवतार कृष्ण के पहले से शुरु हो गये । किन्तु त्रेता का राम ऐसा मनुष्य है जो निरन्तर देव बनने की कोशिश करता रहा । इसलिए उसमें आसमान के देवता का अन्श कुछ अधिक है । द्वापर का कृष्ण ऐसा देव है , जो निरनतर मनुष्य बनने की कोशिश करता रहा । उसमें उसे सम्पूर्ण सफलता मिली । कृष्ण सम्पूर्ण और अबोध मनुष्य है , खूब खाया -खिलाया, खूब प्यार किया और प्यार सिखाया ,जनगण की रक्षा और उसका रास्ता बताया ,निर्लिप्त भोग का महान त्यागी और योगी बना ।

इस प्रसंग में यह प्रश्न बेमतलब है कि मनुष्य के लिए, विशेषकर राजकीय मनुष्य के लिए , राम का रास्ता सुकर और उचित है या कृष्ण का । मतलब की बात यह है कि कृष्ण देव होता हुआ निरन्तर मनुष्य बनता रहा । देव और निस्व और असीमित होने के नाते कृष्ण में जो असम्भव मनुष्यताएँ हैं , जैसी झूठ ,धोखा और हत्या , उनकी नकल करने वाले लोग मूर्ख हैं,उसमें कृष्ण का क्या दोष । कृष्ण की सम्भव और पूर्ण मनुष्यताओं पर ध्यान देना ही उचित है , और एकाग्र ध्यान ।कृष्ण ने इन्द्र को हराया ,वास लेने वाले देवों को भगाया , खाने वाले देवों को प्रतिष्ठित किया , हाड़ ,खून, माँस वाले मनुष्य को देव बनाया , जन-गण में भावना जागृत की देव को आसमान में मत

खोजो,खोजो यहीं अपने बीच, पृथ्वी पर । पृथ्वी वाला देव खाता है , प्यार करता है ,मिल कर रक्षा करता है ।

कृष्ण जो कुछ करता था , जम कर करता था ,खाता था जम कर ,प्यार करता था कम कर , रक्षा भी करता था जम कर करता था : पूर्ण भोग , पूर्ण प्यार , पूर्ण रक्षा । कृष्ण की सभी क्रियाएँ उसकी शक्ति के पूरे इस्तेमाल से ओत-प्रोत रहती थीं , शक्ति का कोई अंश बचा कर नहीं रखता था , कंजूस बिलकुल नहीं था , ऐसा दिलफेंक ,ऐसा शरीर फेंक चाहे मनुष्यों से सम्भव न हो , लेकिन मनुष्य ही हो सकता है , मनुष्य का आदर्श , चाहे जिसके पहुँचने तक हमेशा एक सीढ़ी पहले रुक जाना पड़ता हो । कृष्ण ने खुद गीत गाया है स्थितप्रज्ञ का ,ऐसे मनुष्य का जो अपनी शक्ति का पूरा और जमकर इस्तेमाल करता हो । " कूर्मोगानीव " ने बताया है ऐसे मनुष्य को ।कछुए की तरह यह मनुष्य अपने अंगों को बटोरता है , अपनी इन्द्रियों पर इतना सम्पूर्ण प्रभुत्व है इसको कि इन्द्रियार्थों से उन्हें पूरी तरह हटा लेता है ।कुछ लोग कहेंगे कि यह तो भोग का उलटा हुआ । ऐसी बात नहीं ।जो करना ,जमकर - भोग भी , त्याग भी। जमा हुआ भोगी कृष्ण ,जमा हुआ योगी तो था ही । शायद दोनों में विशेष अन्तर नहीं ।फिर भी कृष्ण ने एकांगी परिभाषा दी ,अचल स्थितप्रज्ञ की , चलस्थितप्रज्ञ की नहीं । उसकी परिभाषा तो दी जो इन्द्रियों से इन्द्रियों को हटा कर पूर्ण प्रभुता निखरता हो,उसकी नहीं जो इन्द्रियों को इन्द्रियार्थों में लपेट कर , घोल कर ।कृष्ण खुद तो दोनों था,परिभाषा में एकांगी रह गया । जो काम किस समय कृष्ण करता था,उसमें अपने समग्र अंगों का एकाग्र प्रयोग करता था ,अपने लिए कुछ भी नहीं बचाता था ,अपना तो था ही नहीं कुछ उसमें। " कूर्मोगानीव " के साथ-साथ " समग्र-अंग-एकाग्री " भी परिभाषा में शामिल होना चाहिए था । जो काम कर, कम कर करो,अपना पूरा मन और शरीर उसमें फेंक कर ।देवता बनने की कोशिश में मनुष्य कुछ कृपण हो गया है ,पूर्ण आत्मसमर्पण वह कुछ भूल सा गया है। जरूरी नहीं है कि वह अपने-आप को किसी दूसरे के समर्पण करे ।अपने ही कामों में पूरा आत्मसमर्पण करे । झाड़ू लगाये तो जमकर ,या अपनी इन्द्रियों का पूरा प्रयोग कर युद्ध में रथ चलाये तो जम कर ,श्यामा मालिन बन कर राधा को फूल बेचने जाए तो जम कर ,जीवन का दर्शन ढूँढे और गाए तो जम कर ।कृष्ण ललकारता है मनुष्य को अकृपण बनने के लिए ,अपनी शक्ति को पूरी तरह और एकाग्र उछालने के लिए। मनुष्य करता कुछ है ,ध्यान कुछ दूसरी तरफ रहता है ।झाड़ू देता है फिर भी कूड़ा कोनों में पड़ा रहता है । एकाग्र ध्यान न हो तो सब इन्द्रियों का अकृपण प्रयोग कैसे हो । " कूर्मोगानीव " और " समग्र-अंग-एकाग्री " मनुष्य को बनना है । यही तो देवता की मनुष्य बनने की कोशिश है । देखो, माँ ,इन्द्र खाली वास लेता है , मैं तो खाता हूँ ।

देश की पूर्व - पश्चिम एकता का देव : कृष्ण (२) : डॉ . लोहिया

आसमान के देवताओं को जो भाग्य उसे बड़े पराक्रम और तकलीफ़ के लिए तैयार रहना चाहिए , तभी कृष्ण को पूरा गोवर्धन पर्वत अपनी छोटी उँगली पर उठाना पड़ा । इन्द्र को वह नाराज कर देता और अपनी गउओं की रक्षा न करता , तो ऐसा कृष्ण किस काम का ।फिर कृष्ण के रक्षा-युग का आरम्भ होने वाला था । एक तरह से बाल और युवा-लीला का शेष ही गिरिधर लीला है । कालिया दहन और कंस वध उसके आसपास के हैं । गोवर्धन उठाने में कृष्ण की उंगली दुखी होगी , अपने गोपों और सखाओं को कुछ झुँझला कर सहारा देने को कहा होगा । माँ को कुछ इतरा कर उँगली दूखने की शिकायत की होगी । गोपियों से आँख लड़ाते हुए अपनी मुसकान द्वारा कहा होगा । उसके पराक्रम पर अचरज करने के लिए राधा और कृष्ण की तो आपस में गम्भीर और प्रफुल्लित मुद्रा रही होगी ।कहना कठिन है कि किसकी ओर कृष्ण ने अधिक निहारा होगा , माँ की ओर इतरा कर , या राधा की ओर प्रफुल्लित हो कर । उँगली बेचारे की दूख रही थी । अब तक दुख रही है , गोवर्धन में तो यही लगता है । वहीं पर मानस गंगा है । जब कृष्ण ने गऊ वंश रूपी दानव को मारा था , राधा बिगड़ पड़ी और इस पाप से बचने के लिए उसने उसी स्थल पर कृष्ण से गंगा माँगी । बेचारे कृष्ण को कौन कौन से असंभव काम करने पड़े हैं । हर समय वह कुछ न कुछ करता रहा है दूसरों को सुखी बनाने के लिए । उसकी उँगली दूख रही है । चलो , उसको सहारा दें । गोवर्धन में सड़क चलते कुछ लोगों ने , जिनमें पंडे होते ही हैं , प्रश्न किया कि मैं कहाँ का हूँ ।

मैंने छेड़ते हुए उत्तर दिया , राम की अयोध्या का ।

पंडों ने जवाब दिया , सब माया एक है ।

जब मेरी छेड़ चलती रही तो एक ने कहा कि आखिर सत्तू वाले राम से गोवर्धन वासियों का नेह कैसे चल सकता है । उनका दिल तो माखन - मिसरी वाले कृष्ण से लगा है ।

माखन - मिसरी वाला कृष्ण , सत्तू वाला राम कुछ सही है , पर उसकी अपनी उँगली अब तक दूख रही है ।

एक बार मथुरा में सड़क चलते एक पंडे से मेरी बातचीत हुई । पंडों की साधारण कसौटी से उस बातचीत का कोई नतीजा न निकला , न निकलने वाला था । लेकिन क्या मीठी मुसकान से उस पंडे ने कहा के जीवन में दो मीठी बात करनी सीख गया है , आसमान वाले देवताओं को भगा गया है , माखन - मिसरी वाले देवों की प्रतिष्ठा कर गया है । लेकिन उसका अपना कौन - कौन सा अंग अब तक दूख रहा है ।

कृष्ण की तरह एक और देवता हो गया है , जिसने मनुष्य बनने की कोशिश की । उसका राज्य संसार में अधिक फैला । शायद इसलिए कि वह गरीब बढ़ई का बेटा था और उसकी अपनी जिन्दगी में वैभव और ऐश न था। शायद इसलिए कि जन - रक्षा का उसका अन्तिम काम ऐसा था कि उसकी उँगली सिर्फ़ न दूखी , उसके शरीर का रोम - रोम सिहरा और अंग - अंग टूट कर वह मरा । अब तक उसका ध्यान करके अपने सीमा बाँधने वाले चमड़े के बाहर उछलते हैं । हो सकता कि इसूमसीह दुनिया में केवल इसलिए फैल गया है कि उसका विरोध उन रोमियों से था जो आज की मालिक सभ्यता के पुरखे हैं । ईसू रोमियों पर चढ़ा । रोमी आज के यूरोपियों पर चढ़े । शायद एक कारण यह भी हो कि कृष्ण - लीला का मजा ब्रज और भारत भूमि के कण-कण से इतना लिपटा है कि कृष्ण की नियति कठिन है । जो भी हो , कृष्ण और क्रिस्टोस दोनों ने आसमान के देवताओं को भगाया । दोनों के नाम और कहानी में भी कहीं - कहीं सादृश्य है । कभी दो महाजनों की तुलना नहीं करनी चाहिए । दोनों अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं ।फिर भी क्रिस्टोस प्रेम के आत्मोत्सर्गी अंग के लिए बेजोड़ है और कृष्ण सम्पूर्ण मनुष्य - लीला के लिए । कभी कृष्ण के वंशज भारतीय शक्तिशाली बनेंगे , तो सम्भव है उसकी लीला दुनिया भर में रस फैलाये ।

कृष्ण बहुत अधिक हिन्दुतान के साथ जुड़ा हुआ है । हिन्दुस्तान के ज्यादातर देव और अवतार अपनी मिट्टी के साथ सने हुए हैं । मिट्टी से अलग करने पर वे बहुत कुछ निष्प्राण हो जाते हैं । त्रेता का राम हिन्दुस्तान की उत्तर - दक्षिण एकता का देव है । द्वापर का कृष्ण देश की पूर्व - पश्चिम धुरी पर घूमे । कभी - कभी तो ऐसा लगता है कि देश को उत्तर - दक्षिण और पूर्व - पश्चिम एक करना ही राम और कृष्ण का धर्म था ।यों सभी धर्मों की उत्पत्ति राजनीति से है , बिखरे हुए स्वजनों को इकट्ठा करना , कलह मिटाना , सुलह कराना और हो सके तो अपनी और सब की सीमा को ढहाना । साथ - साथ जीवन को कुछ ऊँचा उठाना , सदाचार की दृष्टि से और आत्म - चिन्तन की भी ।

देश की एकता और समाज के शुद्धि सम्बन्धी कारणों और आवश्यकताओं से संसार के सभी महान धर्मों की उत्पत्ति हुई है । अलबत्ता , धर्म इन आवश्यकताओं से ऊपर उठ कर , मनुष्य को पूर्ण करने की भी चेष्टा करता है । किन्तु भारतीय धर्म इन आवश्यकताओं से जितना ओत-प्रोत है , उतना और कोई धर्म नहीं । कभी - कभी तो ऐसा लगता है कि राम और कृष्ण के किस्से तो मनगढन्त गाथायें हैं , जिनमें एक अद्वितीय उद्देश्य हासिल करना था , इतने बड़े देश के उत्तर - दक्षिण और पूर्व - पश्चिम को एक रूप में बाँधना था । इस विलक्षण उद्देश्य के अनुरूप ही ये विलक्षण किस्से बने । मेरा मतलब यह नहीं कि सबके सब किस्से झूठे हैं । गोवर्धन पर्वत का किस्सा जिस रूप में प्रचलित है उस रूप में झूठा तो है ही , साथ - साथ न जाने कितने और किस्से , जो कितने और आदमियों के रहे हों एक कृष्ण अथवा राम के साथ जुड़ गये हैं । जोड़ने वालों को

कमाल हासिल हुआ । यह भी हो सकता है कि कोई न कोई चमत्कारिक पुरुष राम और कृष्ण नाम के हुए हों । चमत्कार भी उनका संसार के इतिहास में अनहोना रहा हो । लेकिन उन गाथाकारों का यह कम अनहोना चमत्कार नहीं है , जिन्होंने राम और कृष्ण के जीवन की घटनाओं को इस इस सिलसिले और तफ़सील में बाँधा है कि इतिहास भी उसके सामने लजा गया है ? आज के हिन्दुस्तानी राम और कृष्ण की गाथाओं की एक - एक तफ़सील को चाव से और सप्रमाण जानते हैं , जब कि ऐतिहासिक बुद्ध और अशोक उनके लिए धुँधली स्मृति मात्र रह गये हैं ।

महाभारत हिन्दुस्तान के की पूर्व - पश्चिम यात्रा है , जिस तरह रामायण उत्तर - दक्षिण यात्रा है । पूर्व - पश्चिम यात्रा का नायक कृष्ण है , जिस तरह उत्तर - दक्षिण यात्रा का नायक राम है । मणीपुर से द्वारका तक कृष्ण या उसके सहचरों का पराक्रम हुआ हुआ है , जैसे जनकपुर से श्रीलंका तक राम या उसके सहचरों का । राम का काम अपेक्षाकृत सहज था । कम से कम उस काम में एकरसता अधिक थी । राम का मुकाबला या दोस्ती हुई भील , किरात , किन्नर , राक्षस इत्यादि से , जो उसकी अपनी सभ्यता से अलग थे । राम का काम था इनको अपने में शामिल करना और उनको अपनी सभ्यता में ढाल देना , चाहे हराये बिना या हराने के बाद ।

कृष्ण को वास्ता पड़ा अपने ही लोगों से । एक ही सभ्यता के दो अंगों में से एक को लेकर भारत की पूर्व - पश्चिम एकता कृष्ण को स्थापित करनी पड़ी । इस काम में पेंच ज्यादा थे । तरह - तरह की सन्धि और विग्रह का क्रम चला । न जाने कितनी चालाकियाँ और धूर्ततायें भी हुईं । राजनीति का निचोड़ भी सामने आया - ऐसा छन कर जैसा फिर और न हुआ । अनेकों ऊँचाइयाँ भी छू गयी । दिलचस्प किस्से भी खूब हुए । जैसी पूर्व - पश्चिम राजनीति जटिल थी , वैसे ही मनुष्यों की आपसी सम्बन्ध भी, खास कर मर्द-औरत के । अर्जुन की मणीपुर वाली चित्रांगदा , भीम की हिडिम्बा , और पांचाली का तो कहना ही क्या । कृष्ण की बुआ कुन्ती का एक बेटा था , अर्जुन , दूसरा कर्ण , दोनों अलग - अलग बापों से और कृष्ण ने अर्जुन को कर्ण का छल-वध करने के लिए उकसाया । फिर भी , क्यों जीवन का निचोड़ छन कर आया । क्योंकि कृष्ण जैसा निस्व मनुष्य न कभी हुआ और उससे बढ़ कर कभी होना ही असम्भव है। राम उत्तर - दक्षिण एकता का न सिर्फ नायक बना , राजा भी हुआ । कृष्ण तो पनी मुरली बजाता रहा । महाभारत की नायिका द्रौपदी से महाभारत के नायक कृष्ण ने कभी कुछ लिया नहीं , दिया ही ।

पूर्व - पश्चिम एकता की दो धुरियाँ स्पष्ट ही कृष्ण - काल में थीं । एक पटना - गया की मगधपुरी और दूसरी हस्तिनापुर - इन्द्रप्रस्थ की कुरु-धुरी । मगध - धुरी का भी फैलाव स्वयं कृष्ण की मथुरा तक था जहाँ मगध - नरेश जरासंध का दामाद कंस राज्य करता था । बीच में शिशुपाल आदि मगध के आश्रित - मित्र थे । मगध - धुरी के खिलाफ़ कुरु - धुरी का सशक्त निर्माता कृष्ण था । कितना बड़ा फैलाव किया कृष्ण ने इस धुरी का । पूर्व में मणिपुर से ले कर पश्चिम में द्वारका तक

इस कुरु - धुरी में समावेश किया । देश की दोनों सीमाओं , पूर्व की पहाड़ी सीमा और पश्चिम की समुद्री सीमा को फाँसा और बाँधा , इस धुरी को कायम और शक्तिशाली करने के लिए कितनी मेहनत और कितने पराक्रम करने पड़े , और कितनी लम्बी सूझ सोचनी पड़ी ।उसने पहला ही वार अपने ही घर मथुरा में मगधराज के दामाद पर किया । उस समय सारे हिन्दुस्तान में यह वार गूँजा होगा । कृष्ण की यह पहली ललकार थी , वाणी द्वारा नहीं । उसने कर्म द्वारा रण-भेरी बजायी । कौन अनसुनी कर सकता था । सबको निमन्त्रण हो गया यह सोचने के लिए कि मगध राजा को अथवा जिसे कृष्ण कहे उसे सम्राट के रूप में चुनो । अन्तिम चुनाव भी कृष्ण ने बड़े छली रूप में रखा । कुरु - वंश में ही न्याय-अन्याय के आधार पर दो टुकड़े हुए और उनमें अन्यायी टुकड़ी के साथ मगध - धुरी को जुड़वा दिया। संसार ने सोचा होगा कि वह तो कुरुवंश का अन्दरुनी और आपसी झगड़ा है । कृष्ण जानता था कि वह तो इन्द्रप्रस्थ हस्तिनापुर की कुरु - धुरी और राजगिरि की मगध-धुरी का झगड़ा है ।

राजगिरि राज्य कंस - वध पर तिलमिला उठा होगा । कृष्ण ने पहले ही वार में मगध की पश्चिमी को खतम-सा कर दिया । लेकिन अभी तो ताकत बहुत ज्यादा बटोरनी और बढ़ानी थी । यह तो सिर्फ आरम्भ था । आरम्भ अच्छा हुआ । सारे संसार को मालूम हो गया । लेकिन कृष्ण कोई बुद्धू थोड़े ही था जो आरम्भ की लड़ाई को अन्त बना देता । उसके पास अभी इतनी ताकत तो थी नहीं जो कंस के ससुर और उसकी पूरे हिन्दुस्तान की शक्ति से जूझ बैठता । वार करके , संसार को डंका सुना के कृष्ण भाग गया । भागा भी बड़ी दूर द्वारका में । तभी से उसका नाम रणछोड़दास पड़ा । गुजरात में आज भी हजारों लोग शायद एक लाख से भी अधिक लोग होंगे जिनका नाम रणछोड़दास है । पहले मैं इस नाम पर हँसा करता था , मुसकाना तो कभी न छोड़ूँगा । यों , हिन्दुस्तान में और भी देवता हैं जिन्होंने अपना पराक्रम भाग कर दिखाया जैसे ज्ञानवापी के शिव ने । यह पुराना देश है । लड़ते - लड़ते थकी हड्डियों को भागने का अवसर मिलना चाहिए । लेकिन कृष्ण थकी पिण्डलियों के कारण नहीं भागा । वह भागा जवानी की बढ़ती हड्डियों के कारण । अभी हड्डियों को बढ़ाने और फैलाने का मौका चाहिए था । कृष्ण की पहली लड़ाई तो आजकल की छापामार लड़ाई की तरह थी , वार करो और भागो । अफ़सोस यही है कि कुछ भक्त लोग भगाने ही में मजा लेते हैं ।

द्वारका मथुरा से सीधे फासले पर करीब ७०० मील है । वर्तमान सड़कों की यदि दूरी नापी जाए तो करीब १०५० मील होती है । बिचली दूरी इस तरह ८५० मील होती है । कृष्ण अपने शत्रु से बड़ी दूर तो निकल ही गया , साथ ही साथ देश की पूर्व - पश्चिम एकता हासिल करने के लिए उसने पश्चिम के आखरी नाके को बाँध लिया । बाद में , पाँचों पाण्डवों के बनवासयुग में अर्जुन की चित्रांगदा और भीम की हिडिम्बा के जरिये उसने पूर्व के आखिरी नाके को भी बाँधा । इन फासलों

को नाँपने के लिए मथुरा से अयोध्या , अयोध्या से राजमहल और राजमहल से इम्फाल की दूरी जाननी जरूरी है ।यही रहे होंगे उस समय के विशाल राजमार्ग । मथुरा से अयोध्या की बिचली दूरी करीब ३०० मील है ।अयोध्या से राजमहल करीब ४७० मील है । राजमहल से इम्फाल की बिचली दूरी करीब सवा पाँच सौ , यों वर्तमान सड़कों से फासला करीब ८५० मील और सीधा फासला करीब ३८० मील है । इस तरह मथुरा से इम्फाल का फासला उस समय के राजमार्ग से करीब १६०० मील रहा होगा । कुरु - धुरी के केन्द्र पर कब्जा करने और उसे सशक्त बनाने के पहले कृष्ण केन्द्र से ८०० मील दूर भागा और अपने सहचरों और चेलों को उसने १६०० मील दूर तक घुमाया । पूर्व-पश्चिम की पूरी भारत-यात्रा हो गयी । उस समय की भारतीय राजनीति को समझने के लिए कुछ दूरियाँ और जानना जरूरी है है । मथुरा से बनारस का फासला करीब ३७० मील और मथुरा से पटना करीब ५०० मील है । दिल्ली से , जो तब इन्द्रप्रस्थ थी , मथुरा का फासला करीब ९० मील है । पटने से कलकत्ते का फासला करीब सवा तीन सौ मील है । कलकत्ते के फासले का कोई विशेष तात्पर्य नहीं ,सिर्फ इतना ही कि कलकत्ता भी कुछ समय तक हिन्दुस्तान की राजधानी रही है , चाहे गुलाम हिन्दुस्तान की ।मगध-धुरी का पुनर्जन्म एक अर्थ में कलकत्ते में हुआ । जिस तरह कृष्ण - कालीन मगध-धुरी के लिए राजगिरि केन्द्र , उसी तरह ऐतिहासिक मगध-धुरी के लिए पटना या पाटलिपुत्र केन्द्र है , और इन दोनों का फासला करीब ४० मील है । पटना - राजगिरि केन्द्र का पुनर्जन्म कलकत्ते में होता है , इसका इतिहास के विद्यार्थी अध्ययन करें , चाहे अध्ययन करते समय सन्तापपूर्ण विवेचन करें कि यह काम विदेशी तत्वाधान में क्यों हुआ ।

कृष्ण ने मगध धुरी का नाश करके कुरु - धुरी की प्रतिष्ठा क्यों करनी चाही ? इसका एक उत्तर तो साफ है , भारतीय जागरण का बाहुल्य उस समय उत्तर और पश्चिम में था जो राजगिरि और पटना से बहुत दूर पड़ जाता था । उसके अलावा मगध - धुरी कुछ पुरानी पड़ चुकी थी ,शक्तिशाली थी , किन्तु उसका फैलाव संकुचित था । कुरु - धुरी नयी थी और कृष्ण इसकी शक्ति और इसके फैलाव का सर्वशक्तिसम्पन्न निर्माता था , मगध - धुरी को जिस तरह चाहता शायद न मोड़ सकता ,कुरु - धुरी को अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ और फैला सकता था । सारे देश को बाँधना जो था उसे । कृष्ण त्रिकालदर्शी था । उसने देख लिया होगा कि उत्तर - पश्चिम में आगे चल कर यूनानियों , हूणों ,पठानों , मुगलों आदि के आक्रमण होंगे इसलिए भारतीय एकता की धुरी का केन्द्र कहीं वहीं रचना चाहिए , जो इन आक्रमणों का सशक्त मुकाबला कर कर सके । लेकिन त्रिकालदर्शी क्यों न देख पाया कि इन विदेशी आक्रमणों के पहले ही देशी मगध - धुरी बदला चुकाएगी और सैंकड़ों वर्ष तक भारत पर अपना प्रभुत्व कायम करेगी और आक्रमण के समय तक कृष्ण की भूमि के नजदीक यानि कन्नौज और उज्जैन तक खिसक चुकी होगी , किन्तु अशक्त अवस्था में । त्रिकालदर्शी ने देखा शायद यह सब कुछ हो , लेकिन कुछ न कर सका हो । वह हमेशा के लिए अपने देशवासियों को कैसे ज्ञानी और साधु दोनों बनाता । वह तो केवल रास्ता दिखा सकता था । रास्ते

में भी शायद त्रृटि थी । त्रिकालदर्शी को शायद यह भी देखना चाहिए था कि उसके रास्ते पर ज्ञानी ही नहीं , अनाड़ी भी चलेंगे और वेकितना भारी नुकसान उठायेंगे ।राम के रास्ते पर चल कर अनाड़ी का भी अधिक नहीं बिगड़ता , चाहे बनना भी कम होता हो । अनाड़ी ने कुरु - पांचाल संधि का क्या किया ?

कुरु - धुरी की आधार - शिला थी कुरु - पांचाल संधि । आसपास के इन इलाकों का वज्र समान एका कायम करना था सो कृष्ण ने उन लीलाओं के द्वारा किया , जिनसे पांचाली का विवाह पाँचों पाण्डवों से हो गया । यह पांचाली भी अद्भुत नारी थी । द्रौपदी से बढ़ कर भारत की कोई प्रखर - मुखी और ज्ञानी नारी नहीं । कैसे कुरु पक्ष के सभी को उत्तर देने के लिए ललकारती है कि जो आदमी अपने को हार चुका है क्या दूसरे को दाँव पर रखने की उसमें स्वतंत्र सत्ता है ?

अर्जुन समेत पाँचों पाण्डव उसके सामने फीके थे । यह कृष्णा तो कृष्ण के ही लायक थी । महाभारत का नायक कृष्ण , नायिका कृष्णा । कृष्णा और कृष्ण का सम्बन्ध भी विश्व - साहित्य में बेमिसाल है । दोनों सखा - सखी ही क्यों रहे । कभी कुछ और दोनों में से किसीने होना चाहा ? क्या सखा - सखी का सम्बन्ध पूर्व रूप से मन की देन थी या उसमें कुरु - धुरी के निर्माण और फैलाव का अंश था ? जो हो , कृष्ण और कृष्णा का यह सम्बन्ध राधा और कृष्ण के सम्बन्ध से कम नहीं , लेकिन साहित्यकारों और भक्तों की नजर इस ओर कम पड़ी है । हो सकता है कि भारत की पूर्व - पश्चिम एकता के इस निर्माता को अपनी ही सीख के अनुसार केवल कर्म , न कि कर्मफल का अधिकारी होना पड़ा , शायद इसलिए कि यदि वह वस्य कर्मफल-हेतु बन जाता , तो इतना अनहोना निर्माता हो ही नहीं सकता था । उसने कभी लालच न की कि अपनी मथुरा को ही धुरी - केन्द्र बनाये , उसके लिए दूसरों का हस्तिनापुर ही अच्छा रहा । उसी तरह कृष्णा को भी सखी रूप में रखा , जिसे संसार अपनी कहता है , वैसी न बनाया । कौन जाने कृष्ण के लिए यह सहज था या इसमें भी उसका दिल दूखा था ।

कृष्णा अपने नाम के अनुरूप साँवली थी , महान सुन्दरी रही होगी । उसकी बुद्धि का तेज , उसकी चकित हरिणी आँखों में चमकता रहा होगा । गोरी की अपेक्षा साँवली, नखशिख और अंग में अधिक सुडौल होती है ।राधा गोरी रही होगी। बालक और युवक कृष्ण राधा में एकरस रहा । प्रौढ़ कृष्ण के मन पर कृष्णा छायी रही होगी,राधा और कृष्ण तो एक थे ही।कृष्ण की संतानें कब तक उसकी भूल दोहराती रहेंगी- बेखबर जवानी में गोरी से उलझना और अधेड़ अवस्था में श्यामा को निहारना । कृष्ण - कृष्णा सम्बन्ध में और कुछ न हो , भारतीय मर्दों को श्यामा की तुलना में गोरी के प्रति अपने पक्षपात पर मनन करना चाहिए ।

रामायण की नायिका गोरी है । महाभारत की नायिका कृष्णा है ।गोरी की अपेक्षा साँवला अधिक सजीव है । जो भी हो , इसी कृष्ण - कृष्णा सम्बन्ध का अनाड़ी हाथों फिर पुनर्जन्म हुआ। न रहा उसमें कर्मफल और कर्मफल हेतु त्याग । कृष्णा पांचाल यानी कनौज के इलाके की थी , संयुक्ता भी । धुरी - केन्द्र इन्द्रप्रस्थ का अनाड़ी राजा पृथ्वीराज अपने पुरखे कृष्ण के रास्ते न चल सका ।जिस पांचाली द्रौपदी के जरिये कुरु - धुरी की आधार - शिला रखी गयी , उसी पांचाली संयुक्ता के जरिये दिल्ली - कनौज की होड़ जो विदेशियों के सफल आक्रमणों का कारण बना । कभी - कभी लगता है कि व्यक्ति का तो नहीं लेकिन इतिहास का पुनर्जन्म होता है , कभी फीका कभी रँगीला । कहाँ द्रौपदी और कहाँ संयुक्ता , कहाँ कृष्ण और कहाँ पृथ्वीराज , यह सही है । फीका और मारात्मक पुनर्जन्म , लेकिन पुनर्जन्म तो है ही ।

कृष्ण की कुरु - धुरी के और भी रहस्य रहे होंगे । साफ़ है कि राम आदर्शवादी एकरूप एकत्व का निर्माता और प्रतीक था । उसी तरह जरासंध भौतिकवादी एकत्व का निर्माता था । आजकल कुछ लोग कृष्ण और जरासंध युद्ध को आदर्शवाद - भौतिकवाद का युद्ध मानने लगे हैं । वह सही जँचता है ,किन्तु अधूरा विवेचन । जरासंध भौतिकवादी एकरूप एकत्व का इच्छुक था । बाद के मगधीय मौर्य और गुप्त राज्यों में कुछ हद तक इसी भौतिकवादी एकरूप एकत्व का प्रादुर्भाव हुआ और उसी के अनुरूप बौद्ध धर्म का ।कृष्ण आदर्शवादी बहुरूप एकत्व का का निर्माता था । जहाँ तक मुझे मालूम है ,अभी तक भारत का निर्माण भौतिकवादी बहुरूप एकत्व के आधार पर कभी नहीं हुआ । चिर चमत्कार तो तब होगा जब आदर्शवाद और भौतिकवाद के मिलेजुले बहुरूप एकत्व के आधार पर भारत का निर्माण होगा । अभी तक तो कृष्ण का प्रयास ही सर्वाधिक माननीय मलूम होता है , चाहे अनुकरणीय राम का एकरूप एकत्व ही हो । कृष्ण की बहुरूपता में वह त्रिकाल - जीवन है जो औरों में नहीं ।

कृष्ण यादव-शिरोमणि था , केवल क्षत्रीय राजा ही नहीं , शायद क्षत्रीय उतना नहीं था , जितना अहीर । तभी तो अहीरिन राधा की जगह अडिग है ,क्षत्राणी द्रौपदी उसे हटा न पायी । विराट विश्व और त्रिकाल के उपयुक्त कृष्ण बहुरूप था । राम और जरासंध एकरूप थे , चाहे आदर्शवादी एकरूपता में केन्द्रीयकरण और क्रूरता कम हो , लेकिन कुछ न कुछ केन्द्रीयकरण तो दोनों में होता है । मौर्य और गुप्त राज्यों में कितना केन्द्रीयकरण था , शायद क्रूरता भी ।

बेचारे कृष्ण ने इतनी नि:स्वार्थ मेहनत की , लेकिन जन-मन में राम ही आगे रहा है । सिर्फ बंगाल में ही मुर्दे - " बोलो हरि , हरि बोल " के उच्चारण से - अपनी आख़री यात्रा पर निकाले जाते हैं , नहीं तो कुछ दक्षिण को छोड़ कर सारे भारत में हिन्दू मुर्दे - " राम नाम सत्य है " के साथ ही ले जाये जाते हैं । बंगाल के इतना तो नहीं , फिर भी उड़ीसा और असम में कृष्ण का स्थान अच्छा है। कहना मुशकिल है कि राम और कृष्ण में कौन उन्नीस , कौन बीस है । सबसे आश्चर्य की बात है कि

स्वयं ब्रज के चारों ओर की भूमि के लोग भी वहाँ एक - दूसरे को ' जैरामजी " से नमस्ते करते हैं । सड़क चलते अनजान लोगों को भी यह " जैरामजी " बड़ा मीठा लगता है , शायद एक कारण यह भी हो ।

राम त्रेता के मीठे , शान्त और सुसंस्कृत युग का देव है । कृष्ण पके , जटिल , तीखे और प्रखर बुद्धि युग का देव है । राम गम्य है। कृष्ण अगम्य है । कृष्ण ने इतनी अधिक मेहनत की उसके वंशज उसे अपना अंतिम आदर्श बनाने से घबड़ाते हैं , यदि बनाते भी हैं तो उसके मित्रभेद और कूटनीति की नकल करते हैं , उसका अथक निस्व उनके लिए असाध्य रहता है । इसीलिए कृष्ण हिन्दुस्तान में कर्म का देव न बन सका । कृष्ण ने कर्म राम से ज्यादा किये हैं । कितने सन्धि और विग्रह और प्रदेशों के आपसी सम्बन्धों के धागे उसे पलटने पड़ते थे ।यह बड़ी मेहनत और बड़ा पराक्रम था। इसके यह मतलब नहीं की प्रदेशों के आपसी सम्बन्धों में में कृष्णनीति अब भी चलायी जए । कृष्ण जो पूर्व - पश्चिम की एकता दे गया ,उसी के साथ - साथ उस नीति का औचित्य भी खतम हो गया । बच गया कृष्ण का मन और उसकी वाणी । और बच गया राम का कर्म । अभी तक हिन्दुस्तानी इन दोनों का समन्वय नहीं कर पाये हैं । करें , तो राम के कर्म में भी परिवर्तन आये । राम रोऊ है , इतना कि मर्यादा भंग होती है । कृष्ण कभी रोता नहीं । आँखें जरूर डबडबाती हैं उसकी , कुछ मौकों पर , जैसे जब किसी सखी या नारी को दुष्ट लोग नंगा करने की कोशिश करते हैं ।

कैसे मन और वाणी थे उस कृष्ण के । अब भी तब की गोपियाँ और जो चाहें वे ,उसकी वाणी और मुरली की तान सुन कर रस विभोर हो सकते हैं और अपने चमड़े के बाहर उछल सकते हैं । साथ ही कर्म-संग के त्याग , सुख-दुख,शीत-उष्ण,जय-पराजय के समत्व के योग और सब भूतों में एक अव्यव भाव का सुरीला दर्शन ,उसकी वाणी में सुन सकते हैं ।संसार में एक कृष्ण ही हुआ जिसने दर्शन को गीत बनाया ।

वाणी की देवी द्रौपदी से कृष्ण का सम्बन्ध कैसा था । क्या सखा - सखी का सम्बन्ध स्वयं एक अन्तिम सीढ़ी और असीम मैदान है , जिसके बाद और किसी सीढ़ी और मैदान की जरूरत नहीं ? कृष्ण छलिया जरूर था , लेकिन कृष्णा से उसने कभी छल न किया । शायद वचन - बद्ध था , इसलिए । जब कभी कृष्णा ने उसे याद किया , वह आया । स्त्री - पुरुष की किसलय - मित्रता को , आजकल के वैज्ञानिक , अवरुद्ध रसिकता के नाम से पुकारते हैं । यह अवरोध सामाजिक या मन के आन्तरिक कारणों से हो सकता है । पाँचों पाण्डव कृष्ण के भाई थे और द्रौपदी कुरु - पांचाल संधि की आधार- शिला थी ।अवरोध के सभी कारण मौजूद थे । फिर भी , हो सकता है कि कृष्ण को अपनी चित्तप्रवृत्तियों का कभी विरोध न करना पड़ा हो । यह उसके लिए सहज और अन्तिम सम्बन्ध था अगर यह सही है , तो कृष्ण - कृष्णा के सखा - सखी सम्बन्ध के ब्योरे पर दुनिया में

विश्वास होना चाहिए और तफ़सील से , जिससे से स्त्री - पुरुष सम्बन्ध का एक नया कमरा खुल सके । अगर राधा की छटा निराली है , तो कृष्ण की घटा भी । छटा में तुष्टिप्रदान रस है , घटा में उत्कंठा-प्रधान कर्त्तव्य ।

राधा - रस तो निराला है ही । राधा - कृष्ण एक हैं , राधा - कृष्ण का स्त्री रूप और कृष्ण राधा का पुरुष रूप । भारतीय साहित्य में राधा का जिक्र बहुत पुराना नहीं है , क्योंकि सबसे पहली बार पुराण में आता है " अनुराधा " के नाम से । नाम ही बताता है प्रेम और भक्ति का वह स्वरूप , जो आत्म विभोर है , जिससे सीमा बाँधने वाली चमड़ी रह नहीं जाती । आधुनिक समय में मीरा ने भी उस आत्मविभोरता को पाने की कोशिश की । बहुत दूर तक गयी मीरा , शायद उतनी दूर गयी जितना किसी सजीव देह को किसी याद के लिए जाना संभव हो । फिर भी , मीरा की आत्मविभोरता में कुछ गर्मी थी । कृष्ण को तो कौन जला सकता है , सुलझा भी नहीं सकता , लेकिन मीरा के पास बैठने में उसे जरूर कुछ पसीना आये , कम से कम गर्मी तो लगे । राधा न गरम है , न ठंडी , राधा पूर्ण है । मीरा की कहानी एक और अर्थ में बेजोड़ है । पद्मिनी मीरा की पुरखिन थी । दोनों चित्तौड़ की नायिकाएँ हैं । करीब ढाई सौ वर्ष का अन्तर है । कौन बड़ी है , वह पद्मिनी जो जौहर करती है या वह मीरा जिसे कृष्ण के लिए नाचने से कोई मना न कर सका । पुराने देश की यही प्रतिभा है । बड़ा जमाना देखा है इस हिन्दुस्तान ने । क्या पद्मिनी थकती - थकती सैंकड़ों बरस में मीरा बन जाती है ? या मीरा ही पद्मिनी का श्रेष्ठ स्वरूप है ? अथवा जब प्रताप आता है , तब मीरा फिर पद्मिनी बनती है । हे त्रिकालदर्शी कृष्ण ! क्या तुम एक ही में मीरा और पद्मिनी नहीं बन सकते ?

राधा - रस का पूरा मजा तो ब्रज - रज में मिलता है । मैं सरयू और अयोध्या का बेटा हूँ । ब्रज - रज में शायद कभी न लौट सकूँगा । लेकिन मन से तो लौट चुका हूँ । श्री राधा की नगरी बरसाने के पास एक रात रह कर मैंने राधारानी के गीत सुने हैं ।

कृष्ण बड़ा छलिया था । कभी श्यामा मालिन बन कर , राधा को फूल बेचने आता था । कभी वैद्य बन कर आता था , प्रमाण देने कि राधा अभी ससुराल जाने लायक नहीं है । कभी राधा प्यारी को गोदाने का न्योता देने के लिए गोदनहारिन बन कर आता था । कभी वृन्दा की साड़ी पहन कर आता था और जब राधा उससे एक बार चिपट कर अलग होती थी , शायद झुँझला कर , शायद इतरा कर , तब श्री कृष्ण मुरारी को ही छट्ठी का दूध याद आता था , बैठ कर समझाओ राधारानी को कि वृन्दा से आँखें नहीं लड़ायी ।

मैं समझता हूँ कि नारी अगर कहीं नर के बराबर हुइ है , तो सिर्फ ब्रज में और कान्हा के पास । शायद इसीलिए आज भी हिन्दुस्तान की औरतें वृन्दावन में जमुना के किनारे एक पेड़ में रुमाल

जितनी चुनड़ी बाँधने का अभिनय करती हैं । कौन औरत नहीं चाहेगी कन्हैया से अपनी चुनड़ी हरवाना , क्योंकि कौन औरत नहीं जानती कि दुष्ट जनों द्वारा चीर हरण के समय कृष्ण ही उनकी चुनड़ी अनन्त करेगा । शायद जो औरतें पेड़ में चीर बाँधती हैं , उन्हें यह सब बताने पर वह लजाएँगी , लेकिन उनके पुत्र पुण्य आदि की कामना के पीछे भी कौन - सी सुषुप्त याद है ।

ब्रज की मुरली लोगों को इतना विह्वल कैसे बना देती है कि वे कुरुक्षेत्र के कृष्ण को भूल जाँए और फिर मुझे तो लगता है कि अयोध्या का राम मनीपुर से द्वारका के कृष्ण को कभी भुलाने न देगा । जहाँ मैंने चीर बाँधने का अभिनय देखा उसी के नीचे वृन्दावन के गन्दे पानी का नाला बहते देखा , जो जमुना से मिलता है और राधा रानी के बरसाने की रँगीली गली में पैर बचा - बचा कर रखना पड़ता है कि कहीं किसी गन्दगी में न सन जाँए । यह वही रँगीली गली है , जहाँ से बरसाने की औरतें हर होली पर लाठी ले कर निकलती हैं और जिनके नुक्कड़ पर नन्द गाँव में मर्द मोटे साफे बाँध और बड़ी ढालों से अपनी रक्षा करते हैं । राधा रानी अगर कहीं आ जाए , तो वह इन नालों और गन्दगियों को तो खतम करे ही , बरसाने की औरतों के हाथ में इत्र , गुलाल और हल्के , भीनी महक वाले , रंग की पिचकाली थमाये और नन्द गाँव के मरदों को होली खेलने के लिए न्योता दे। ब्रज में महक और नहीं है , कुंज नहीं है , केवल करोल रह गये हैं । शीतलता खतम है ।बरसाने में मैंने राधारानी की अहीरिनों को बहुत ढूँढा । पाँच - दस घर होंगे । वहाँ बनियाइनों और ब्राह्मणियों का जमाव हो गया है , जब किसी जात में कोई बड़ा आदमी या बड़ी औरत हुई , तीर्थ - स्थान बना और मन्दिर और दुकानें देखते - देखते आयीं , तब इन द्विज नारियों के चेहरे भी म्लान थे , गरीब , कृश और रोगी , कुछ लोग मुझे मूर्खतावश द्विज - शत्रु समझने लगे हैं । मैं तो द्विज - मित्र हूँ , इसलिए देख रहा हूँ कि राधारानी की गोपियाँ , मल्लाहिनों और चमाइनों को हटा कर द्विजनारियों ने भी अपनी कांति खो दी है । मिलाओ ब्रज की रज में पुष्पों की महक , दो हिन्दुस्तान को कृष्ण की बहुरूपी एकता , हटाओ राम का एक रूपी द्विज - शूद्र धर्म , लेकिन चलो राम के मर्यादा वाले रास्ते पर , सच और नियम पालन कर ।

सरयू और यमुना कर्त्तव्य की नदियाँ हैं । कर्त्तव्य कभी - कभी कठोर हो कर अन्यायी हो जाता है और नुकसान कर बैठता है । जमुना और चम्बल , केन तथा दूसरी जमुना - मुखी नदियाँ रस की नदियाँ हैं । रस में मिलन है , कलह मिटाता है । लेकिन लास्य भी है , जो गिरावट में मनुष्य को निकम्मा बना देता है । इसी रसभरी इतराती जमुना के किनारे कृष्ण ने अपनी लीला की , लेकिन कुरु धुरी का केन्द्र उसने गंगा के किनारे ही बसाया । बाद में , हिन्दुस्तान के कुछ राज्य जमुना के किनारे बने और एक अब भी चल रहा है । जमुना क्या तुम कभी बदलोगी , आखिर गंगा में ही तो गिरती हो । क्या कभी इस भूमि पर रसमय कर्त्तव्य का उदय होगा । कृष्ण ! कौन जाने तुम थे या नहीं । कैसे तुमने राधा - लीला को कुरु लला से निभाया । लोग कहते हैं कि युवा कृष्ण का प्रौढ़

कृष्ण से कोई सम्बन्ध नहीं । बताते हैं कि महाभारत में राधा का नाम तक नहीं । बात इतनी सच नहीं , क्योंकि शिशुपाल ने क्रोध में कृष्ण की पुरानी बातें साधारण तौर पर बिना नामकरण के बतायी हैं । सभ्य लोग ऐसे जिक्र असमय नहीं किया करते , जो समझते हैं वे , और जो नहीं समझते हैं वे भी । महाभारत में राधा का जिक्र हो कैसे सकता है । राधा का वर्ण्न तो वही होगा जहाँ तीन लोक का स्वामी उसका दास है । रास का कृष्ण और गीता का कृष्ण एक हैं । न जाने हजारों वर्ष से अभी तक पलड़ा इधर या उधर क्यों भारी हो जाता है ? बताओ कृष्ण !

(" जन " , १९५८ जुलाई से)